भारतीय ज्ञान परम्परा और शोध

Hrushikesh Padhan
Department of Sanskrit
Jamia Millia Islamia, New Delhi

Key Words- भारतीय ज्ञान परम्परा, शोध, शल्यपद्धति

सारांश-

भारतीय ज्ञान परम्परा दीर्घ अनेक वर्षों से चली आरही है, या सृष्टि के आरम्भ से ही चली आरही है ऐसा कहना भी अत्योक्ति नहीं होगी। ऐसा नहीं है कि प्राचीन ऋषि मुनि लोग कोई कार्य बिना सोचे समझे किया करते थे, अपितु आज के शोधकार्यों से कई गुणा बेहतर थे। चहे आयुर्वेद के क्षेत्र में हो या विज्ञान के क्षेत्र में हो। परिवर्तनशील संसार में सभी बदलते हैं और इसका शिकार हम हुए हैं। उतरोत्तर पद्धतियां बदलती गई और हम पुनः अवनत होते गए। भारत में अंग्रेजों के आने के बाद शिक्षा के क्षेत्र में अनेक बदलाव हुए हैं, उनमें से शोध भी है। हलांकि पाचीन काल में ऋषि मुनियों के शोध पद्धति रही है वैसा आज हमें देखने को कम मिलता है। भारतीय ज्ञान परम्परा में शोध एक निहित तत्व है। इसमें कोई कार्य ऐसा नहीं होगा जिसमें कि बिना जांचे परखे किया जाए। प्राचीन सहित्यों में अनेक ऐसे तथ्य मिलते हैं जो कि शोधपरक होने की पुष्टि है।

प्रस्तावना-

भारत एक देश नहीं बल्कि ज्ञान, संस्कार, आदर्श की कर्मभूमि है। यहां कई ऋषि मुनि हुए हैं जिन्होने अपने ज्ञान कौशल से वेद, उपनिषद, पुराण आदि अनेक विद्याओं का परम्परागत से अब तक जीवित रखा है। ज्ञान का मतलब है शिक्षा और शिक्षा के बिना मनुष्य पशु के समान हैं[१]। भारतीय ज्ञान परम्परा अक्षुण्ण है इस परम्परा पर अनेक घात हुये परन्तु यह कभी अविचल नहीं हुआ, अनादि काल से जैसे था अब भी वैसे ही है। इस भारतवर्ष में उत्पन्न सभी ऋषि मुनियों से समग्र विश्व ज्ञान चरित्र की शिक्षा लेती है[२] क्योंकि यह समग्र विश्व का मार्गदर्शक तथा विश्वगुरु है। भारतीय ज्ञान परम्परा में शोध का का अहम भूमिका है। जितने भी ऋषि मुनि हुये वे अपने ज्ञानार्जन शोध और तपस्या के बल पर ही अर्जन कर पाये हैं। जिस प्रकार अनाभ्यासे विषं विद्या है उसी प्रकार बिना शोध और परख के विद्याज्ञान निष्फल है। इसलिए इस समय से नहीं बल्कि अनादि काल से यह ज्ञान परम्परा में शोध महत्वपूर्ण भूमिका रही है।

©Indira Gandhi National Open University

ज्ञान और शोध (परिभाषा)–

अपेक्षा रहित सत्य की स्वयं अनुभूति करना ही ज्ञान है। यह सुख-दुःख, आदि भावों से आशा रहित होता है। विषय के आधार पर इसका विभाजन किया जाता है। इन्द्रियग्राहक विषय पाँच होते हैं- रूप, रस, गन्ध और स्पर्श। ज्ञान लोगों के भौतिक तथा बौद्धिक सामाजिक क्रियाकलाप की उपज संकेतों के रूप में जगत के वस्तुनिष्ठ गुणों और सम्बन्धों, प्राकृतिक और मानवीय तत्त्वों के बारे में भावनाओं की अभिव्यक्ति है। ज्ञान दैनिक दिनचर्या का हिस्सा होने के साथ-साथ वैज्ञानिक भी हो सकता है। वैज्ञानिक ज्ञान, आनुभविक और सैद्धांतिक वर्गों में विभक्त होता है। इसके अतिरिक्त समाज में ज्ञान की मिथकीय, कलात्मक, धार्मिक तथा अन्य कई अनुभूतियाँ होती हैं। सिद्धांततः सामाजिक, ऐतिहासिक अवस्थाओं पर मनुष्य के क्रियाकलाप की निर्भरता को प्रकट किये बिना ज्ञान के सार को नहीं समझा जा सकता है। मनुष्य की सामाजिक शक्ति ज्ञान में ही संचित होती है, मानक रूप धारण करती है तथा विषयीकृत भी होती है। यह तथ्य मनुष्य के बौद्धिक कार्यकलाप की प्रमुखता और आत्मनिर्भर स्वरूप के बारे में आत्मगत प्रत्ययवादी सिद्धान्तों का अधार है[३]।

विशाल अर्थ में शोध या अनुसन्धान किसी भी क्षेत्र में ज्ञान की खोज करना, गवेषणा करना या उपस्थित ज्ञान मे निहित अदृश्य ज्ञान को अन्वेषण करना है। अनेक अनुसन्धान में विभिन्न विधि का सहारा लेते हुये जिज्ञासा का समाधान करने की प्रयत्न की जाती है, नवीन वस्तुओं की खोज और प्राचीन वस्तुओं में पुनः परीक्षण कर उसी से नये तथ्यों का प्राप्त करना “शोध” कहलाता है।

शोध उस प्रक्रिया का नाम है जिससे बोधपूर्वक प्रयत्नों से तथ्यों का संकलन कर सूक्ष्मग्राही एवं विश्लेषणात्मक बुद्धि से उसका अवलोकन कर नये तथ्यों एवं सिद्धान्तों का उद्घाटन किया जाता है।

ज्ञान की किसी भी शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानी पूर्वक किए गए अन्वेषण को शोध की संज्ञा दी जाती है ।(एडवांस्ड लर्नर डिक्शनरी आफ् करेंट् इंग्लिश्)

रैडमैन और मोरी ने अपने पुस्तक “द रोमन्स ओफ् रीसर्च्” में शोध का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि नवीन ज्ञान की प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयत्न को हम शोध कहते हैं।

लुण्डबर्ग ने लिखा है कि अवलोकित सामग्री का संभावित वर्गीकरण, साधनीकरण एवं सत्यापन करते हुए पर्याप्त कर्म विषयक और व्यवस्थित पद्धति है शोध[४]।

©Indira Gandhi National Open University

अक्षय ज्ञान परम्परा-

यह ज्ञान परम्परा अनादि काल से चली आरही है। इस भूमि में देवता, सूर-असूर सभी तरसते हैं जन्म लेने के लिए क्योकि यहां से स्वर्ग और मोक्ष का मार्ग प्रशस्त होता है।

गायन्ति देवाः किल गीतकानि धान्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।

स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्[५] ॥

देवता गीत गाते हैं कि स्वर्ग और अपवर्ग कई मार्गभूत भारत भूमि के भाग में जन्मे लोग देवताओं की अपेक्षा भी अधिक धन्य है। अर्थात स्वर्ग और मोक्ष के मार्ग स्वरूप भारत भूमि को धन्य धन्य कहते हुए देवगण इस भारतवर्ष का शौर्यगान करते हैं। यहां मनुष्य को जन्म पाना देवत्व पद प्राप्त करने से भी बढकर है। ईशावास्योपनिषद मे ज्ञान को विद्या तथा अविद्या के नाम से संकेत किया गया है-

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते[६]॥

अर्थात जो विद्या और अविद्या दोनों को एक ही साथ जानता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से अमरत्व (मुक्ति) को प्राप्त कर लेता है।

वेद-

वेद ज्ञान का भण्डार है इसी से ही सभी ज्ञान, विद्याओं का सृजन हुआ है। महर्षि दयानन्द ने भी अपने सत्यार्थ प्रकाश में लिखा है कि "वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है, वेद का पढना-पढाना और सुनना-सुनाना सबको चहिये और विद्या ज्ञान की वृद्धि और अविद्या अज्ञान को नष्ट करना सब मनुष्यों का कर्तव्य है"।

सर्वासां सत्यविद्यानां ज्ञानं वेदस्य पुस्तकं । वेदस्याध्यापनं तस्य तथैवाध्यापनं मतम् ॥

श्रावणं च तथेवास्य स्वयं च श्रवणं मतम् । आर्याणां परमोधर्मः सर्वेषां न विकल्पितः ॥

अविद्यावनतिः कार्या विद्यायाश्च समुन्नतिः[७] ॥

©Indira Gandhi National Open University

नाट्यशास्त्र के रचयिता आचार्य भरतमुनि ने भी अपने ग्रन्थ के मंगलाचरण में वेद को सभी ज्ञान का स्रोत बताते हुए कहा है –

प्रणम्य शिरसौ देवौ पितामहमहेश्वरौ ।

नाट्यशास्त्रं प्र वक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम्[९] ॥

मैं पितामह ब्रह्म तथा महेश्वर भगवान शंकर को प्रणाम कर उस नाट्यशास्त्र क निरुपण करुंगा जो ब्रह्माजी के द्वारा वेदों से उत्पन्न किया गया है।

विशेषताएं-

ज्ञान तो स्वयं में ही प्रकाश है माण्डुकोपनिषद में वर्णन है "अजमानिद्रमस्वप्नं प्रभातं भवति स्वयं[९]" इस ज्ञान की अनेक विशेषताएं भारतीय संस्कृति से जुडी हुई है। अन्धकार से प्रकाश की ओर, अज्ञान से ज्ञान की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर जाने की चर्चा की गई है जिससे अमानव समाज ज्ञानवान होकर इस संसार मे श्रेष्ठ बनी रहे।

असतो मा सद्गमय ।

तमसो मा ज्योतिर्गमय ॥

मृत्योर्मामृतं गमय[१०] ॥

समग्र विश्व को परिवार की दृष्टि से देखना यहां के परम्परा में निहित है। सनातन धर्म का मूल संस्कार है –

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।

उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्[११] ॥

आदर्श उज्ज्वल परम्परा का चित्रण तथा उपदेश कालिदास के काव्य में दिखाई देता है। किसी युवति का विवाह होता है तो उसे किस प्रकार का उपदेश दिया जाता था यह इस् काव्य से स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है कि महर्षि कण्व के आश्रम से जब शकुन्तला राजा दुष्यन्त के राज्य में जाती है तब ऋषि कण्व ने उपदेश में कहते हैं कि -

©Indira Gandhi National Open University

शुश्रुस्व गुरुन्कुरु प्रियसखीवृतिं सप्तनीजने ।

भतुर्विप्रकृतानि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः ॥

भूयिष्ठं भवः दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी ।

यान्तत्येव गृहिणीपदं युवतयो वामा कुलस्याधयः[१२] ॥

अर्थात सास श्वशुर की सेवा करना, सौतों के साथ प्रियसखी जैसा व्यवहार करना,क्रोध के कारण पति के विपरीत मत होना, सेवकजनों के प्रति उदार बनना, अपने भाग्य पर घमण्ड नहीं करना इस प्रकार की युवतियां उच्च पद(सम्मान) प्राप्त करती हैं। इसके विपरीत आचरण करने वाली कुल के लिए समस्या बन जाती है।

ज्ञान परम्परा का महत्व-

ज्ञान की महत्ता के बारे में गीता में भी कहा गया है कि-

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।

तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति[१३] ॥

क्योकि ज्ञान का इतना प्रभाव है इसलिए ज्ञान के समान पवित्र करनेवाला शुद्ध करनेवाला इस लोक में समाधियोग द्वारा बहुत नहीं है। कर्मयोग या दूसरा कोई भली प्रकार शुद्धान्तःकरण हुआ आर्थात वैसी योग्यता को प्राप्त हुआ मुमुक्षु स्वयं अपने आत्मा में ही उस ज्ञान को पाता है यानि साक्षात किया करता है।

ज्ञान परम्परा और शोध-

भारतवर्ष अपने में एक वैज्ञानिक अनुसन्धान है, जो ऋषिओं द्वारा हजारों वर्षों के शोध आदि से निर्मित है। इसका निर्माण वैदिक काल में ऋषियों और मुनियों, सन्तों और महात्माओं ने मिलकर किया था। इसके प्रणयन में प्रकृति और पुरुष दोनों संलग्न थे। ज्ञान के हजारों हजार पुरोधाओं ने इसके विषय में अलग-अलग अपना चिन्तन प्रस्तुत किये थे तब जाकर संकलित होकर यह परम्परा का निर्माण हुआ था। इस परम्परा के अमूल्य निधि को वेदों, आरण्यकों, पुराणों, स्मृतिओं, धर्मसूत्रों, रामायण-महाभारत आदि में सुरक्षित रखा गया[१४]।

©Indira Gandhi National Open University

भारतीय ज्ञान परम्परा में प्राचीन काल में भी ऋषि-मुनियों ने शोध के माध्यम से ही किसी निष्कर्ष पर पहुंच पाए, अन्यथा पा भी जाते तो वह फलीभूत नही हो पाती, क्योंकि बिना परीक्षा किया हुआ ज्ञान नाश को प्राप्त हो जाती है। पञ्चतन्त्र में भी लिखा है-

अपरीक्ष्य न कर्तव्यं कर्तव्यं सुपरीक्ष्यितम्[१५] ॥

किसी भी कार्य को बिना परीक्षा किये नहीं करना चहिये। शोधित किया हुआ कार्य किसी सहि निर्णय पर पहुंचता है।

पणिनि का निरन्तर शोध के पश्चात पणिनिय व्याकरण वर्तमान में सारे विश्व के समक्ष इतिहास प्रस्तुत है। पाणिनि ने अपने समय की बोलचाल भाषा को लेकर ही शोध किया गया था। पाश्चात्य विद्वान बेवर ने पणिनि व्याकरण को संस्कृत भाषा के इतिहास में सर्वश्रेष्ठ माना है क्योंकि उसमें बहुत बारीकी से धातुओं और शब्दरुपों की छानवीन की गयी है[१६]।

शल्य चिकित्सा का जन्म भारतवर्ष में हुआ, इस विज्ञान के अन्तर्गत शरीर के अंगों को चीर-फाड की जाती और उन्हे ठीक किया जाता है। इस विधि की खोज महर्षि सुश्रुत ने की थी **"तत्र मनः शरीराऽऽबाधकारणानि शल्यानि[१७]"। वर्तमान में जो अत्याधुनिक तकनिकों से युक्त प्लाष्टिक सर्जरी पद्धति है इसे हमारे प्रचीन ऋषि- मुनियों ने बहुत पहले से ही व्यवहार में ला चुके थे।**

निष्कर्ष-

इस भारतीय परम्परा में शोध जिस प्रकार उस समय अपने सत्ता को कायम किया हुआ था आज भी भारतीय शिक्षण संस्थाओं में शोध उसी रुप में है। चिकित्सा के क्षेत्र में भी भारतीय ऋषिओं ने अनेक शोध के पश्चात बहुत उत्तम चिकित्सा की खोज कर पाये जिससे सम्पूर्ण विश्व शिक्षा ली। शिक्षा(ज्ञान) में शोध महत्वपूर्ण घटक है, बिना शोध के कोई भी ज्ञान फलप्रद नहीं होगा क्योंकि किसी विषय को परखने के बाद और उससे पहले की स्थिति में बहुत अन्तर होता है। सभी क्षेत्र में शोध अनिवार्य रुप से लागू होना चाहिये ताकि अभी के जो मानव समाज हैं उनके लिए यह सभी ज्ञान परिमार्जित रुप में प्राप्त हो सके। उत्तम ज्ञान ही एक स्वस्थ समाज को उसके शीर्ष तक पहुचाने में योगदान देती है। सभी योनि में मनुष्य को श्रेष्ठ कहा गया है अतः श्रेष्ठों का कार्य भी उत्तम और कल्याणप्रद होना आवश्यक है।

©Indira Gandhi National Open University

सन्दर्भ सूची

---

[1] नीतिशतकम २०

[2] मनुस्मृति २.२०

[3] दर्शनकोश, प्रगति प्रकाशन, मास्को, १९८०, पृष्ठ२२६-, ISBN ५-०१०००९०७२-

[4] डां० विनयमोहन शर्मा (२००६), शोध-प्रविधि, नयी दिल्ली नेशनल पेपरबैक्स पृ०११

[5] विष्णुपुराण २.३.२४ मनोज पब्लिकेशन २०१४, ISBN-८१३१०१७३५४

[6] ईशोपनिषद ११

[7] सत्यार्थ प्रकाश, किरण प्रकाशन २०१५ ISBN-१३:९८७-८१८९०६८७८३

[8] नाट्यशास्त्र १

[9] माण्डूक्योपनिषद (अलातशान्ति प्रकरण्) ८१

[10] बृहदारण्यकोपनिषद् १.३.२८

[11] महोपनिषद् ४.७१

[12] अभिज्ञानश्कुन्तलम् ४.१८

[13] भगवतगीता ४.३८

[14] मिश्र जयशंकर : प्राचीन भारत का इतिहास,पृ० ६६७

[15] पञ्चतंत्र, अपरीक्षितकारम् १

[16] पाणिनिकालीन भारतवर्ष पृ०.२ मोतिलाल वनारसिदास प्रकाशन

[17] सुश्रुत संहिता,सूत्रस्थान७.४,अष्टाङ्गहृदय पृ०.३०४

©Indira Gandhi National Open University